RESEARCH PAPER | Social Science | Volume : 6 | Issue : 3 | March 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

जयोदय महाकाव्य में शिक्षा

KEYWORDS

Prof Dr B L Sethi

Director, Trilok Institutute of higer Sturdies and Research,Hotel OM Tower, Church Road, M I Road, Jaipur- 302001

Smt Anita Yadav

Research Scholar, Depp. of Political Science JJT University- Chudela Jhunjhunu

जयोदय महाकाव्य में शिक्षा का पर्याय विद्या, ज्ञान और श्रुत आया है। बताया गया है कि जब आदि तीर्थंकर के बालक बालिका व्यस्क हुए तो उन्होने उन्हें स्वयं ही शिक्षारम्भ कराया। इस सन्दर्भ में लिखा है कि रूप लावण्य और शील से समन्वित होने पर भी विद्या से विभूषित होना परम आवश्यक है। इस लोक में विद्वान् व्यक्ति ही सम्मान को प्राप्त होता है। विद्या ही मनुष्य को यश देने वाली है, विद्या ही आत्मकल्याणक करने वाली है और अच्छी तरह से अभ्यास की गयी विद्या ही समस्त मनोरथों को पूर्ण करती है।

कन्या हो या पुत्र, दोनों को समानरूप से विद्यार्जन करना चाहिए। कल्पलता के समान समस्त सुखों, ऐश्वर्यो और वैभवों की प्राप्ति विद्या द्वारा ही होती है। अतएव बाल्यकाल से विद्या प्राप्ति के लिए निरन्तर सचेष्ट रहना चाहिए। जयोदय महाकाव्य में जीवनोत्थान और जीवन को सुसंकृत करने पर बल दिया गया है।

शिक्षा का लक्ष्य आन्तरिक दैवी शक्तियों की अभिव्यक्ति करना है, अन्तर्निहित श्रेष्ठतम उदात्त मानवीय गुणों का विकास करना है तथा शरीर, मन और आत्मा को सबल बनाना है। त्याग, संयम, आचार–विचार और कर्त्तव्यनिष्ठा का बोध भी शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होता है। सतत् स्वाध्याय से ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियाँ प्रादुर्भूत हो जाती है, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुचिता, बौद्धिक प्रखरता, आध्यात्मिक दृष्टि, नैतिकबल, कर्मठता एवं सहिष्णुता की प्राप्ति शिक्षा तथा स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव है। तथ्य और आंकड़े वाली शिक्षा निस्सार है।

जयोदय महाकाव्य में आदितीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी कन्याओं और कुमारो को जो शिक्षा दी है, उससे शिक्षा के निम्न उद्देश्यों पर प्रकाश पड़ता है:–

(1) आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशीलता ।
(2) जगत् और जीवन के सम्बन्धों का परिज्ञान ।
(3) आचार, दर्शन और विज्ञान के त्रिभुज की उपलब्धि ।
(4) प्रसुप्त शक्तियों का उद्बोधन ।
(5) सहिष्णुता की प्राप्ति ।
(6) कलात्मक जीवन–यापन करने की प्रेरणा की प्राप्ति ।
(7) अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण द्वारा भावात्मक अहिंसा की प्राप्ति ।
(8) व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसरों की प्राप्ति ।
(9) कर्तव्य पालन के प्रति जागरूकता का बोध ।
(10) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का उन्नयन ।
(11) विवेक दृष्टि की प्राप्ति ।

शिक्षा पद्धति

शिक्षा पद्धति (आदि 2/102–104, 21/96) :– जयोदय महाकाव्य से कई प्रकार की शिक्षा पद्धतियों का संकेत प्राप्त होता है। जिन्हें निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है:–

(1) पाठ– (आदि 16/104, 16/105–108)
(2) प्रश्नोत्तर – (आदि 1/138, 2/2, 2/26, 2/28–29, 12/212–252)
(3) शास्त्रार्थ– (आदि 4/16–30, 5/27–88)
(4) उपदेश – (आदि 21/96, 23/61–72, 24/85–180)
(5) उपक्रम या उपोद्घात (आदि 2/102–104)
(6) पंचांग– (आदि 21/96)

(1) प्रथम पद्धति में गुरू या शिक्षक शिष्यों को पाठ–विधि द्वारा अंक और अक्षर ज्ञान की शिक्षा देता है। वह किसी काष्ठपट्टिका के ऊपर अंक या अक्षर देता है। शिष्य उन अक्षर या अंको का अनुकरण करता है। बार बार उन्हें लिखकर कण्ठस्थ करता है। इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से होता है। उन्होने अपनी कन्याओं को इस पाठ विधि द्वारा ही शिक्षा दी थी। यह शिक्षा विधि सामान्य बुद्धिवाले अल्पवयस्क छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है। इस पद्धति में अभ्यास का भी अन्तर्भाव निहित हैं। शिक्षक द्वारा लिखे गये अंक अक्षरों का लेखन और वाचन दोनो ही प्रक्रियाओ से शिक्षार्थी अभ्यास करता है। इस प्रक्रिया में अभ्यासात्मक प्रश्नों के उत्तर लिखे जाते है। जयोदय महाकाव्य में इस पद्धति का उपयोग सर्वाधिक हुआ है। इस पद्धति में मूलतः तीन शिक्षातत्व पाये जाते है –

(1) उच्चारण की स्पष्टता :– शिक्षक वर्णों का उच्चारण उनके स्थान और प्रयत्न के अनुसार शिक्षा सिखा पाता है। शिक्षाग्रन्थों में जिस उच्चारण विधि का निरूपण आता है, उस विधि के अनुसार वर्णों का उच्चारण शिष्यों को सिखाया जाता है।

(2) लेखनकला का अभ्यास :– पाठ पद्धति का दूसरा तत्व लिखना सीखने का अभ्यास है। ब्राह्मी और सुन्दरी को लिखने की कला सिखलायी गयी थी।

(3) तर्कात्मक संख्या प्रणाली :– वस्तुओं के गिनने के रूप में अंकविद्या का प्रारम्भ हुआ। अंक का महत्त्व हमें तभी मालूम होता है, जब हम कई समूहों में एक अंक संख्या को पाते हैं। तब हम वस्तुओं का बार बार नाम न लेकर उनकी संख्या को कहते है। इन संख्याओ का विकास जीवादि पदार्थो के ज्ञान के लिए हुआ है। अतः पाठ शैली के तीसरे तत्व द्वारा परिकर्माष्टक योग, गुणा, घटाव, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, एवं घनमूल इन आठ क्रियाओं का परिज्ञान किया गया है।

(2) जयोदय महाकाव्य में प्रश्नोत्तर पद्धति का प्रयोग श्रेणिक प्रश्नकर्ता शिष्या के प्रतीक और गौतम गणधर उत्तर देने वाले गुरू के रूप में पाया जाता है। देवियाँ विभिन्न प्रकार के प्रश्न माता से पूछती है और माता उत्तर देकर उनके ज्ञान का संवर्धन करती है। समस्यापूर्तियाँ और पहेलियाँ भी इसी विधि में सम्मिलित हो जाती है। समस्यापूर्ति आदि का लक्ष्य बुद्धि को तीव्र बनाना तथा अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना है।

इस प्रकार शिष्य गुरू से प्रश्न करता है और गुरू चमत्कारपूर्ण उत्तर देकर शिष्य को सन्तुष्ट करते है। इस प्रणाली द्वारा विषयों को ह्रदयंगम करने में विशेष सुविधा होती है। गूढ़ और दुरूह विषय भी सरलता पूर्वक समझ में आते हैं।

प्रश्नोत्तर दोनों ही ओर से किये जाते हैं। शिष्य भी प्रश्न करता है और गुरू भी शिष्य से। गुरू प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर देकर शास्त्रीय ज्ञान का संवर्द्धन करता है। शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से यह प्रौढ़ शैली है, इसका प्रयोग व्यस्क और प्रतिभाशाली छात्रों के लिए ही किया जाता है।

(3) शास्त्रार्थ प्राचीन शिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापनापूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न प्रकार के तर्को, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती हैं। प्रमाण, नय, निक्षेप द्वारा वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन शास्त्रार्थ प्रणाली पर किया गया है।

जयोदय महाकाव्य में शास्त्रार्थ मन्त्रियों के बीच आप्तत्व की जानकारी के लिए किया गया है। इस विधि में गुरू व शिष्य को शास्त्रार्थ करने की पद्धति एवं तत्क. ाल उत्तर प्रत्युत्तर देने की शक्ति का विकास होता है। इसमें स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष में दूषणोद्भावन की प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। शास्त्रों का सम्यक् परिज्ञान इसी पद्धति द्वारा प्राप्त किया जाता था।

इस शिक्षा विधि की निम्न विशेषताएँ हैं –

1. ''ननु'' शब्द द्वारा शंका उत्पन्न करना।
2. ''इति चेन्न'' द्वारा शंका का निराकरण करना।
3. यथेंकं द्वारा परपक्ष का निराकरण और स्वपक्ष की पुष्टि।
4. अनवस्था, चक्रक, प्रसंगसाधन आदि दोषों का उद्भावन।

Volume : 6 | Issue : 3 | March 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

5. एवं 'आह,' 'तत्र,' 'यत्र,' 'तन्त्रोक्त' आदि संकेतांशों द्वारा कथनों और उद्धरणों को उपस्थित कर समालोचन ।
6. विकल्पों को उठाकर प्रतिपक्षी का समाधान करते हुए स्वपक्ष की सिद्धि। इसके लिए आक्षेपिणी, विक्षेपिणी जैसी कथाओं की प्रक्रिया का प्रयोग।
7. 'तंदुक्त,' 'नादि' जैसे शब्दों का किसी वस्तु या कथन पर जोर देने के लिए प्रयोग।

(4) उपदेश विधिः– इसका प्रमुख रूप उपदेश द्वारा शिक्षा देना है। जयोदय महा. काव्य में आदितीर्थंकर का धर्मोपदेश इसी विधि के अन्तर्गत लिया जा सकता है। स्वाध्याय के पाँच भेदों में उपदेश का कथन आया है। इसका वास्तविक रहस्य गुरूद्वारा भाषण के रूप में विषय का प्रतिपादन करना है। इस विधि का उपयोग उसी समय किया जाता है, जब शिष्य प्रौढ़ हो जाता है और उसका मस्तिष्क विक. सित हो प्रमुख विषयों को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर लेता हैं।

(5) उपक्रम या उपोद्घात विधि :– वर्णनीय विषय को शिष्य के मस्तिष्क में पूर्णतया प्रविष्ट कर देना उपक्रम पाठ विधि है, इसी का दूसरा नाम उपोद्घात भी है। आन. ुपूर्वी, नाम, प्रमाण, अभिधेय और अर्थाधिकार ये उपक्रम के पाँच भेद हैं। आदिक्रम, मध्यक्रम और अन्त्यक्रम द्वारा वस्तुओं का प्रतिपादन करना अनुपूर्वी है। क्रमपूर्वक विषयों का परिज्ञान कराना अनुपूर्वी में परिगणित है। जो गुरू या पाठक इस विधि को अपनाता है, वह पाठय विषय का किसी क्रम विशेष के अनुसार विवेचन या व्याख्यान करता है। अनुपूर्वी से विषय को ह्रदयंगम करने में सहायता प्राप्त होती है।

नाम विधि में विस्तारपूर्वक वस्तुओं के नामों का प्रतिपादन किया जाता है। जो गुरू इस विधि का विशेषज्ञ होता है वह अपनी पाठ्य शैली में मनोरंजकता और सरलता लाने के लिए नाम का विस्तार करता है। एक प्रकार से इसकी गणना निक्षेपविधि में की जा सकती हैं।

प्रमाणविधि में वस्तु का सर्वांगीण निरूपण और नयविधि में एक–एक अंश का विव. ेचन किया जाता हैं।

अभिधेय में अर्थ का विभिन्न दृष्टिकोण द्वारा कथन किया जाता है। द्रव्य और भ. ावपूर्वक पदों की व्याख्या प्रस्तुत कर विविध भंगावलियो की स्थापना की जाती है। एक ही विषय या वस्तु के अनेक रूपों में प्रतिपादन कर पाठ्य विषयों को सरल और बोधगम्य बनाया जाता है।

(6) पंचांगविधिः– इसके स्वाध्याय सम्बन्धी पाँच अंग है। इन पाँचों अंगो द्वारा विषय के मर्म को समझा जाता है।

पाठक सर्वप्रथम वाचना का प्रयोग करता है। वाचना का अर्थ पढ़ना है। उसके बाद पृच्दना–पूछकर विषय के मर्म को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। अधि गत विषय को बार–बार अभ्यास द्वारा स्मरण रखने का प्रयास अनुप्रेक्षा है। मनन और चिन्तन किये गये विषय की धारणा बनाये रखने के लिए घाख घोख कर याद करना घोष स्वाध्याय है। उपदेश के रूप में विषय को समझना या समझाना उपदेश स्वाध्याय है। पंचांगविधि द्वारा विषय की व्याख्या एवं उसे समझने का पूर्ण प्रयास किया जाता है। जिस प्रकार समुद्र की गहराई शनैः शनैः बढ़ती जाती है, उसी प्रकार पंचांगविधिःद्वारा शिक्षा का उत्तरोत्तर विस्तार होता जाता है।

शास्त्रों का पाठ उसकी व्याख्या और भाष्यों को ह्रदयंगम करना इस पाठशैली के अर्न्तगत है।

संदर्भ

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री –''आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ – 295–300
2. महापुराण 8/22, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री – आदिपुराण में प्रतिपादित भारत पृष्ठ –307
3. महापुराण 19/53–57, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री– '' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत पृष्ठ–293
4. जयोदय महाकाव्य 16/97–102
5. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री –'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ – 266–272